

पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन

श्री समयसार, कलश २७१ - गुजराती प्रवचन रत्नाकर

भाग ११, पेज २५१-२५२ (PDF page 264 {middle para}-265),

हिन्दी प्रवचन रत्नाकर भाग ११, पेज ५७५ (PDF 587, last para),

ता. ०४-०८-१९९० प्रवचन नंबर ५२३

यह समयसारजी परमागम शास्त्र का परिशिष्ट नाम का अधिकार है। उसमें २७१ नंबर का श्लोक। उसके प्रत्ये, उसकी बाबत में यानि इस अधिकार के बाद २७१ कलश पर गुरुदेव ने बहुत विस्तार से व्याख्यान दिया है। उसका संक्षिप्त में सार ये है, इस कलश का, अथवा अमृतचंद आचार्य भगवान को जो कहना है, वह इतना ही है कि अनंत-अनंतकाल से तू तेरे आत्मा को जानने का छोड़कर, अनंत-अनंतकाल से पर को जानने में तू रुक गया है। आत्मा को जानना चाहिए, जाने तो सम्यग्दर्शन हो सकता है। बिना जाने सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता। तो आत्मा को जानना चाहिए, वो भूल गया और परपदार्थ को जानने में रुक गया, उसकी रुचि बनी (हुई) है कि मैं पर को जानता हूँ, तो उपयोग वहाँ ही चला जाता है। तो वहाँ से हटाकर उपयोग अंदर में, अपने शुद्धात्मा में आवे, अपना आत्मा ही ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता बन जावे अभेदरूप अनुभव हो जावे, वो उस कलश का अर्थ (मर्म) है। उसमें वहाँ तक आया है।

इसी प्रकार, फिर से, इसी प्रकार भगवान आत्मा स्वच्छ चैतन्य दर्पण है, लिया था, फिर से लेता हूँ। **उसके ज्ञान में ज्ञेयों के आकार की झलक आने पर, ज्ञेयाकार दिखता है।** राग की झलक उपयोग में आते ही, उपयोग ज्ञेयाकाररूप दिखता है। राग का आकाररूप उपयोग दिखता है। **ज्ञेयाकार दिखता है। सामने जैसे ज्ञेय हैं, राग-द्वेष, मोह, कषाय, सुख-दुःख ऐसा। उसी प्रकार की विशेषतारूप अपनी ज्ञान की दशा होने पर,** वो विशेषरूप पर्याय हुई, ये जो राग ज्ञान में प्रतिभासित हुआ, ऐसी ज्ञान की पर्याय हुई, (ऐसी) दशा होने से मानो कि ज्ञान ज्ञेयाकाररूप हो गया।

राग के आकाररूप ज्ञान हो गया। ज्ञेयाकाररूप ज्ञान हो गया, **ऐसा दिखता है,** बहिर्दृष्टि से, रागवाले की दृष्टि से। आत्मा की दृष्टि छूट गयी, राग दिखाई दिया। तो राग दिखाई दिया ज्ञान में, तो ज्ञान ज्ञेयाकार रागरूप हो गया, ऐसा उसको दिखाई देता है। **परंतु** ऐसा होने पर भी, जब राग ज्ञान में स्वच्छज्ञान में प्रतिभासित होता है, उस ही समय, राग को हटाना नहीं है। राग भले प्रतिभासित हो ज्ञान की स्वच्छता में, **परंतु ज्ञान, ज्ञेयाकार हुआ ही नहीं है,** ज्ञान के प्रतिभास के समय, दुःख के प्रतिभास के समय, ज्ञान ज्ञेयाकार यानि ज्ञेय स्वरूप हुआ नहीं। रागरूप हुआ नहीं। दुःखरूप हुआ नहीं है।

परंतु ज्ञान, ज्ञेयाकार हुआ ही नहीं, ज्ञानाकार है; वह तो ज्ञानाकार ही (है)...परपदार्थ का प्रतिभास हो तो रागरूप हो गया, दुःखरूप हो गया, देह जानने में आया, प्रतिभास, तो देहरूप हो गया, ऐसी तो ज्ञान की पर्याय होती ही नहीं। **अर्थात् वे ज्ञेय की कल्लोलें नहीं हैं, वो** राग की पर्याय नहीं है,

दुःख की पर्याय नहीं है, यह देह की पर्याय उसमें नहीं आयी। वह तो ज्ञान की पर्याय है, स्वच्छता। **अर्थात् वे ज्ञेय की कल्लोलें नहीं हैं, परंतु ज्ञान की ही कल्लोलें हैं, कल्लोलें हैं,** वो तो ज्ञान का उत्पाद हुआ है। राग का प्रतिभास होता है, तो ज्ञान, रागरूप होता नहीं है, दुःखरूप होता नहीं है। ज्ञान जुदा और ज्ञेय जुदा रहता है। ज्ञेय को हटाना नहीं है, अपने को। किसी को हटाना नहीं। भले प्रतिभास हो तो ऐसा कर कि मेरे, मेरे में तो ज्ञान जानने में आता है। भले झलक हो। दर्पण में भले कोयले की, अग्नि की झलक हो, तो दर्पण तो स्वच्छ दिखता है। ऐसे (ही) उपयोग में राग प्रतिभासित तो होता है, तो भी रागरूप ज्ञान होता नहीं है। वो **ज्ञान की ही कल्लोलें हैं**, उत्पाद-व्यय ज्ञान का है।

ज्ञान की ही दशा है; राग की दशा नहीं है। राग जब ज्ञान के अंदर प्रतिभासित होता है, तो वह राग की पर्याय नहीं है, ज्ञान की पर्याय है। राग की पर्याय राग में रही, ज्ञान की पर्याय ज्ञान में रही। इधर तो ज्ञान होता है, भले राग ज्ञेयरूप हो, निमित्तरूप भले राग हो, तो भी ज्ञान रागरूप हुआ नहीं है। ज्ञेयाकाररूप हुआ नहीं है।

ज्ञान की ही दशा है; ज्ञेयों का उसमें कुछ भी है ही नहीं। ज्ञान में राग झलकता है, तो बिल्कुल ज्ञान अशुद्ध होता ही नहीं है। स्वच्छ ही रहता है और स्वच्छता को पकड़े तो शुद्धोपयोग हो जाता है। राग को पकड़ता है, तो अज्ञानी बन जाता है। समझे? **समझ में आया कुछ?** बस, इतना चला था। अभी आगे, आज का नया।

आहाहा! ऐसी अपनी अस्तित्व की महिमा जाने बिना, मैं कौन हूँ? अपनी मूल महिमा आए बिना, अपना अस्तित्व जाने बिना **भाई! तू दया, दान, व्रत, तप कर-करके सूख जाये** सूख जाये यानि क्या? सुखाई जाये शरीर पूरा। ऐसा पतला हो जाये, सूखकर लकड़ी। सुखाई जाये तो ऐसा (हो जाये), आहाहा! दुबला हो जाये। सूख जाये। **तो भी लेशमात्र भी धर्म होगा नहीं।** व्रत, तप कितना भी करे, तो भी धर्म होगा नहीं। आहाहा!

तो मुनिराज तो ये व्रत-तप सब करते हैं, बारह प्रकार के तप का, तप का तो ज्ञान है, सब आता तो है, शास्त्र में! कि भैया, वो जो शुभराग आता है ना व्रत का, वो मुनिराज राग (को) करते नहीं हैं। व्रत आता है, उसको मात्र जानते हैं। जाना हुआ प्रयोजनवान है। किया हुआ प्रयोजनवान, आदर किया हुआ प्रयोजनवान नहीं है। वो शुभराग से धर्म होता है, ऐसा मानते नहीं हैं क्योंकि शुभराग आश्रवतत्व है। संवरतत्व नहीं है। होता है बारह प्रकार का तप, साधक को आता है, ऐसा 'न' नहीं है। उसके कोई काल-क्रम में, क्रमबद्धपर्याय में जो परिणाम आने योग्य आता है, तो जानता है। बाकी मैं करता हूँ और करने योग्य है, निश्चय धर्म मेरे को होगा और मोक्ष हो जाएगा, ऐसा नहीं है। **तो भी लेशमात्र भी धर्म** लेशमात्र, नवमीं ग्रैवेयक गया अनंत बार। आहाहा! आता है ना श्रीमद् में? तो भी कुछ लाभ हुआ नहीं है।

अपने स्वरूप के महात्म्य जाने बिना मैं ज्ञानानंद परमात्मा हूँ, मैं पूर्णानंद हूँ, आठ कर्म से मैं भिन्न हूँ, कर्म का उदय मेरे में आता नहीं है। कर्म के उदय में जुड़कर जो परिणाम राग होता है, वो मेरा स्वभाव नहीं है, विभाव है, ऐसा भेदज्ञान चलता है जीव को, तो **अपने स्वरूप के महात्म्य जाने बिना, धर्म की क्रिया कभी नहीं हो सकती।** महिमा अपनी नहीं आई। पुण्य की महिमा आ गई। आहाहा!

साधक तो अनिच्छक और अपरिग्रही है। वो पुण्य को, पाप को, आहार को, पानी को इत्यादि कोई परपदार्थ की इच्छा (उसको) होती नहीं। आहाहा!

अपने स्वरूप के महात्म्य जाने बिना धर्म - धर्म यानि सम्यदर्शन-ज्ञान-चारित्र का परिणाम, जो वस्तु का स्वभाव है, पर्याय का स्वभाव है, वीतरागी परिणति - वह **धर्म की क्रिया कभी भी नहीं हो सकती।**

अभी अपना थोड़ा, पूर्व भूमिका में स्थानकवासी थे ना? ३०-४० साल पहले, वो थोड़ी अनुभव की बात करते हैं। **छोटी उम्र की बात है, पालेज में पिताजी की दुकान थी, वह बंद करके रात्रि में महाराज उपाश्रय में आये हुए हों, स्थानकवासी की बात है, वहाँ उनके पास जाते थे। वहाँ महाराज गाते थे-**

'भूधरजी तमने भूलयो रे भटकूँ छूँ भववनां,
कुतराना भवमां में बीणी खादा कटका, त्यां भूखना वेठया भड़का रे'
उसका हिंदी:-

'भूधरजी तुमको भूलकर मैं भटका हूँ भववन में,
कुत्ते के भव में मैंने टुकड़े चुनकर खाए,
कटका टुकड़ा रोटी का, वहाँ भूख का वेठया भड़का रे,

अब उसमें तत्व का कुछ पता नहीं, वहाँ तो तत्व है ही नहीं। तो ऐसी-ऐसी बातें करे, तो छोटी उमर में १५-१६-१७ वर्ष की उम्र में वो जाते थे, परंतु सुनकर उस समय प्रसन्न-प्रसन्न हो जाते थे। लोक में भी सर्वत्र ऐसा ही चल रहा है न! स्वयं कौन और कैसा है, इसका पता नहीं होता, परंतु व्रत, तप, भक्ति, पूजा आदि करने लगे; वगैरह-वगैरह। ऐसा कि इनसे धर्म होगा, ऐसी मान्यता अनादिकाल से चालू है, आज तक। परंतु धूल में भी उसमें धर्म नहीं होता। उसमें, धूल में कुछ धर्म है नहीं। धर्म का छाँटा नहीं है, बिंदु नहीं है उसमें। वो तो राग है, राग की क्रिया।

स्वयं कौन है, इसकी पहचान बिना धर्म किसमें होगा? धर्म तो आत्मा में होता है और आत्मा के आश्रय से होता है। उसकी तो खबर नहीं। बापू! मैं ज्ञानस्वरूप हूँ- बापू! भैया! भाई! करुणा करके कहते हैं, मैं ज्ञानस्वरूप हूँ-ऐसा भूलकर, उसको तो भूल गया। मैं ज्ञाता हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ, वो तो भूल गया।

ऐसा भूलकर राग के कर्तापने में लगा रहे, राग करना, राग करना, राग करना, दुःखबुद्धि तक तो आता नहीं है। पाप तो करना नहीं है, तो पुण्य तो करना चाहिए। बीच का रास्ता है, दूसरा क्या करें? अनुभव तक तो मैं पहुँचता नहीं हूँ। पाप तो करना नहीं है, तो बीच में पुण्य तो करना चाहिए, ऐसा करके राग के कर्तापने में लगा रहे, वह तो पागलपन है। आहाहा! ये ज्ञानी, अज्ञानी को पागल कहते हैं और अज्ञानी, ज्ञानी को भी पागल कहते हैं। क्या पेट्रोल के बिना मोटर चलती है? सोनगढ़ की मोटर पेट्रोल के बिना चलती है। सुन! आहाहा! ऐसे-ऐसे शुरूआत में बोहोत..., शुरूआत की बात है। आहाहा! दो द्रव्य की एकता थी ना? आहाहा! भिन्नता बताई पहले।

पागलपन है। पूरी दुनिया ऐसी पागल है। पूरी दुनिया ऐसी पागल है। कर्तापने में लग गया। ऐसा करूँ, ऐसा करूँ, ऐसा करूँ, ऐसा करूँ। आहाहा! **समझ में आया कुछ?**

आत्मा ज्ञाता है, राग का कर्ता नहीं है। मानता है, वो तो पागलपना है। अज्ञानी कहो, अज्ञान कहो कि पागलपना कहो, मोही कहो, मदिरा पिया है। आहाहा! पागल हो गया आहाहा!

यहाँ कहते हैं वे ज्ञान तरंगे ही ज्ञान के द्वारा ज्ञात होती हैं। ज्ञान की तरंग यानि ज्ञान की पर्याय, ज्ञान के द्वारा ज्ञात होती है, जानने में आती है। भेद अपेक्षा से, ज्ञान की पर्याय जानने में आती है। अभेद अपेक्षा से ज्ञायक जानने में आता है। ज्ञायक को नहीं समझे इसलिए ज्ञान की पर्याय जानने में आती है। अभेद का भेद करके सद्भूत व्यवहार करके समझाया जाता है। दूसरा तो उपाय नहीं है। व्यवहार बिना परमार्थ कह सकते नहीं। तो भी व्यवहार अनुसरण करने योग्य नहीं है।

ज्ञान के द्वारा ज्ञात होती हैं। अपने अस्तित्व में, स्वयं अपना अस्तित्व है ना? ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा। उसके अस्तित्व में, होने में, सत्ता में, सत् में, **दया, दान आदि के भाव, दो और, या शरीर, मन, वाणी इत्यादि परज्ञेयों का प्रवेश नहीं है।** अपना अस्तित्व है ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा, उसमें राग और राग का फल दुःख, उसका प्रवेश नहीं है। आत्मा में तो नहीं है ज्ञायक में, मगर जो उपयोग है लक्षण, उसमें भी राग का प्रवेश नहीं हुआ है। राग का प्रवेश हो जाये, तो उपयोग लक्षण रहता नहीं है। उपयोग में उपयोग है, उपयोग में क्रोधादि नहीं है। और क्रोधादि में उपयोग नहीं है। और आठ प्रकार के कर्म और नोकर्म में उपयोग नहीं है। और उपयोग में आठ प्रकार के कर्म नहीं है। ऐसा अविपरीत ज्ञान जिसको प्रगट होता है, उसको संवर की पर्याय प्रगट हो जाती है।

क्या फ़रमाते हैं गुरुदेव? कि उपयोग के अंदर राग आता नहीं है। राग की भले झलक आवे। जैसे दर्पण में अग्नि की झलक आवे, मगर दर्पण के अंदर अग्नि प्रवेश करती नहीं है। ऐसे उपयोग में राग आता नहीं है। उपयोग में उपयोग है, उपयोग में क्रोधादि नहीं है, ऐसी स्थिति है। ऐसी स्थिति ख्याल में आवे तो शुद्धोपयोग हो जाता है। पहले स्थिति का वर्णन किया कि उपयोग में राग नहीं है और राग में उपयोग नहीं है। आठ प्रकार का कर्म और शरीर में उपयोग नहीं है और उपयोग में कर्म और शरीर नहीं है। जुदा ही है। स्वभाव से जुदा ही है। कौन से नय से जुदा ही है? नय का क्या काम है तेरे को? वहाँ लिखा ही नहीं (है)। नय का नाम ही नहीं लिखा (है)। उपयोग में उपयोग है और उपयोग में क्रोधादि नहीं है। आहाहा! ये तो निश्चयनय से उपयोग में राग नहीं है। तो निश्चयनय से राग उपयोग में नहीं है, तो प्रतिपक्ष आ जाएगा कि व्यवहारनय से तो उपयोग में राग है। देखो! समझ में आया कुछ? आहाहा!

नय को समझाया गया तो नय में चोंट (चिपक) गया। नय में चिपक गया। तो निश्चयनय से ऐसा है ना? निश्चयनय से आत्मा में राग नहीं है ना? मगर व्यवहारनय तो है ना? निश्चयनय लगाया ही नहीं। स्वभाव में नय होती ही नहीं है।

स्वभाव निरपेक्ष है। आहाहा! निश्चयनय की बात है वो तो, राग नहीं है। ठीक है! मगर व्यवहारनय से तो राग आत्मा में होता है। जो न हो तो चार गति सिद्ध नहीं होगी। अभी तेरे को चार गति सिद्ध करनी है? चार गति में रूलना है तेरे को? तो मान कि आत्मा में राग है। सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान में तो आया है

कि आत्मा उपयोगमय है, रागमय है नहीं। उपयोग से आत्मा अनादि-अनंत अनन्य है और एक समय भी राग से अनन्य नहीं है। अन्य ही है। जैसे उपयोग से अनन्य है, ऐसा (अगर) तू माने कि राग से भी अनन्य है, तो आत्मा जड़ हो जाएगा, ऐसा पाठ है। स्पष्ट पाठ है। आहाहा!

गुरुदेव फ़रमाते हैं कि **ज्ञान के द्वारा ज्ञात होती हैं। अपने अस्तित्व में**, स्वयं अपना होना(पना) है ज्ञानस्वभावी आत्मा, सबकी बात चलती है। सबके उपयोग की बात है। अभी उपयोग में किसी को राग अन्दर में आया ही नहीं। अभी की बात है। आहाहा! राग का प्रतिभास देखकर मैं रागी, वो तो उसका अज्ञान हो गया। आहाहा! उसमें आता नहीं है राग। जो राग आ जावे और माने कि राग आ गया तो, तो सम्यग्ज्ञान (हो गया)। आता नहीं है और मानता है, इसलिए मिथ्याज्ञान है। आत्मा और आश्रव दोनों जुदा हैं, तीनोंकाल। जीवतत्व और आश्रवतत्व एक होते (नहीं)। एक होवें तो नवतत्व का आठतत्व हो जाए। आठ का सात, सात का छः, ऐसे-ऐसे खत्म हो जायें नवतत्व। ऐसा होता नहीं।

क्या कहा? **अपने अस्तित्व में**। जहाँ मेरापना है, अस्तित्व है, ज्ञानस्वरूपी आत्मा, उसमें **दया, दान आदि के भाव**, उसमें नहीं हैं। राग, राग में है। उपयोग, उपयोग में है। उपयोग में राग नहीं है और राग में उपयोग नहीं है। या **शरीर, मन, वाणी इत्यादि परज्ञेयों का प्रवेश नहीं**; दुःख का प्रवेश आत्मा में तो नहीं है त्रिकालीद्रव्य में, मगर जो उपयोग लक्षण प्रगट होता है, उसमें भी दुःख आता नहीं है। दुःख झलकता है मगर दुःख आता नहीं है। आहाहा! मानता है कि मैं दुःखी हो गया, वो तो अज्ञान है। भेदज्ञान का अभाव हो गया उसको। भेदज्ञान नहीं किया उसने। उसमें राग नहीं आता है, तो कंप्यूटर का मशीन, कहाँ से उपयोग में आवे? आहाहा!

मुमुक्षु:- दोबारा।

उत्तर:- दोबारा। हाँ! क्या फ़रमाते हैं? सबकी बात हैं। उपयोग लक्षण है। तत्त्वार्थ-सूत्र में उपयोगोलक्षणम् है कि नहीं? वो उपयोग लक्षण ऐसा है कि जिसमें आत्मा निरंतर जानने में आ रहा है। आबाल-गोपाल सबको जानने में आ रहा है। जो जानने में, उसमें ज्ञायक ज्ञेय न बने, तो उपयोग ही न हो। और उपयोग में ज्ञायक जानने में न आवे, तो वो उपयोग ही न हो। निरन्तर ज्ञान में ज्ञायक जानने में आ रहा है, ऐसा जो उपयोग है, उसमें राग नहीं है, कर्म नहीं है, नोकर्म (नहीं है)। मांगलिक में कहा, नमः समयसार के अंदर कि भगवान आत्मा को मैं नमस्कार करता हूँ। वो भगवान आत्मा कैसा है? कि भावकर्म से रहित यानि मिथ्यात्व के परिणाम से रहित है। कभी? कि तीनोंकाल। भाव-मिथ्यात्व हो! राग कहो कि मिथ्यात्व कहो, एक ही बात है।

भावकर्म से रहित यानि मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय, योग, चार प्रकार (का) जो आश्रव है, बंध का कारण, कर्म के बंध का निमित्तकारण, उससे आत्मा जुदा है। उसमें राग आता नहीं है। शरीर, मन, वाणी उसमें आते नहीं है। **इत्यादि परज्ञेयों का प्रवेश नहीं है, वे तो भिन्न-पर हैं**। रागादि, दया, दान, करुणा, कोमलता का, यह सुनने का जो प्रशस्त राग है ना, वो आत्मा में होता नहीं है। आत्मा से बाहर होता है। आत्मा की जो बाउंड्री (boundary) (सीमा) है ना, उससे बाहर होता है, सुनने का राग।

सब (कुछ) तो बाहर ही है, उसकी बात तो छोड़ो। कठिन पड़े तो क्या करें? आचार्य भगवान तो

जैसा स्वरूप है, भेदज्ञान का, ऐसा बताएँ, तो कोई विरला पा जावे, तो, पामो (प्राप्त करो) तो पामो।
(हरिगीत)

विरले पुरुष ही जानते निज तत्व को विरले सुनें।

विरल जाने, कोई विरल है। वो शुद्धनय का उपदेश ही विरल है।

विरल जाने कोई, विरल है। वो शुद्धनय का उपदेश ही विरल है। कहीं-कहीं है, ऐसा लिखा है। शुद्धनय का उपदेश भी विरल है, यानि उपयोग में राग नहीं है, ऐसा उपदेश भी विरल है।

आत्मा में राग होता है। क्या राग दीवार में होता है? हाँ! राग तो आत्मा में होता है। मेरे में होता है, मैं कर्ता हूँ और मैं उसका फल अकेला भोक्ता हूँ। आहाहा! दृष्टि विपरीत है। एकत्व कर लिया आत्मा और आश्रय का। यहाँ तो गुरुदेव फरमाते हैं कि तेरा ज्ञानोपयोग जो प्रगट होता है, जिसमें ज्ञायक जानने में आ रहा है, ऐसे उपयोग में रागादि आता नहीं है। जो राग नहीं आता है, तो शरीर तो कहाँ से उसमें आ जावे?

इसलिए जानने की क्रिया भी ज्ञान द्वारा, आत्मा द्वारा ज्ञात होती है। आत्मा के द्वारा आत्मा जानने में आता है। आत्मा के द्वारा जो, आत्मा में नहीं है, वो जानने में आता नहीं है। क्या कहा? जो आत्मा में जो है, वो तो जानने में आता है। मगर जो आत्मा में नहीं है, वो जानने में आता नहीं है।

करने में तो गया, ज्ञानस्वरूप आत्मा(मे) (आ)गया (तहाँ) कर्ताबुद्धि तो गई, मगर जानने में नहीं आता है क्योंकि उसमें है ही नहीं। जो है उसके अंदर, वो जानने में आता है - ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख, वीर्य अनंत-अनंत-अनंत गुण शक्ति, वो जानने में आती है। उसके आश्रय से निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई, वो भी जानने में आती है। मगर जो उसमें द्रव्य, गुण, पर्याय में नहीं है, अपनी सत्ता में, वो जानने में भी आता नहीं है। ऐसा भेदज्ञान है। जुदाई है, स्वभाव से।

यह तो भाई! निश्चय की बात है। ये तो इसमें निश्चय-व्यवहार लगाया ही नहीं। निश्चय-व्यवहार संवर अधिकार में लगाया (ही) नहीं है। आहाहा! उपयोग में उपयोग है। उपयोग में क्रोधादि नहीं हैं। ये तो निश्चय से राग का अकर्ता है। क्या कहा? निश्चयनय से आत्मा, राग का करनेवाला नहीं है। ये तो बराबर, सही है। क्या कहा? वो तो आगम का वचन है। अशुद्धनिश्चयनय से आत्मा राग का कर्ता है। आहाहा! राग का कर्ता नहीं है। शुद्धनिश्चयनय से (आत्मा) राग का कर्ता नहीं है तो अशुद्धनिश्चयनय से तो कर्ता है कि नहीं? कर्ता आ गया। भाई! स्वभाव से अकर्ता है। नय का काम तेरे में है नहीं। आहाहा! स्वभाव से अकारक-अवेदक है। कर्ता-भोक्ता स्वभाव में नहीं है। ये तो कर्ताबुद्धि हो गयी है और इसलिए निश्चय से अकर्ता है और व्यवहार से कर्ता है, नवतत्व की सिद्धि करने के लिए है। भेद की सिद्धि करने के लिए है। स्वभाव की सिद्धि करने के लिए नय का काम नहीं है। स्वभाव तो ज्ञानमय है। स्वभाव से अकर्ता हूँ। स्वभाव से ज्ञायक हूँ। मैं तो स्वभाव से ज्ञायक हूँ। आहाहा!

एक नई बहन है। उनको मस्ती चढ़ गई, बाहर गाँव की है। वो देवलाली आई थी। बस सुना दो-चार दिन। बहिन थी, माता। आहाहा! प्रौढ़ उम्र यानि पचास-पचपन-साठ वर्ष की उम्र। मैं तो स्वभाव से

ज्ञायक हूँ, बसा आहाहा! क्या बोलती हैं आप? हाँ भाईश्री! मैं तो स्वभाव से ही ज्ञायक हूँ। बसा नय-फय का काम नहीं है वहाँ। निश्चयनय से ज्ञायक है आत्मा कि स्वभाव से (ज्ञायक है)? स्वभाव से ही ज्ञायक है। वो तो जब नहीं जानता है, जानता नहीं है प्रमाण से, प्रमाण में आया, प्रमाण में दो नय लगाया, व्यवहारनय से है, तो निषेध करके निश्चयनय से नहीं है, ऐसा आ जा - पक्ष में, तो पक्षातिक्रान्त होगा। ये तो स्वभाव से शुद्ध है आत्मा। आत्मा स्वभाव से शुद्ध है कि निश्चयनय से शुद्ध है? बोलो!

मुमुक्षु:- स्वभाव से शुद्ध है।

पण्डितजी:- नय लगाने कि प्रक्रिया है ही नहीं। अपेक्षा से अनंत प्रकार सो नय लगाया जाता है। आप कहते हैं ना कि (स्वभाव में) नय लगाने की ज़रूरत नहीं है।

उत्तर:- ज़रूरत नहीं है। स्वभाव से कह दिया तो नय लगाने की ज़रूरत नहीं है। नहीं होती है।

पण्डितजी:- यह नियम है।

उत्तर:- हाँ यह नियम है। बोलो! ऐसा नियम है। जब स्वभाव से बोलो, तो नय लगाने की ज़रूरत नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु:- वो नय बन गया अपने आप।

उत्तर:- अपने आप।

पण्डितजी:- या तो अपेक्षा बताओ या नय लगाओ। ऐसा है साहब! ऐसा अगर स्वभाव की अपेक्षा कहा या नय की अपेक्षा, एक ही अर्थ है उसका।

उत्तर:- एक ही अर्थ है। स्वभाव से ही है। स्वभाव से शुद्ध है, आत्मा। आत्मा स्वभाव से शुद्ध है। निश्चयनय से शुद्ध है, ऐसा नहीं है। निश्चयनय से शुद्ध है, तो व्यवहारनय से अशुद्ध आ जाएगा। आहाहा! पीछे के दरवाज़े से मिथ्यात्व प्रविष्ट हो जाएगा। स्वभाव से देखो, नय की ज़रूरत नहीं है। आहाहा!

पण्डितजी ने कहा कि स्वभाव की बात हो तो नय की ज़रूरत नहीं है। ऐसा है, अग्नि उष्ण है। कौनसे नय से उष्ण है? मेरे को ज़रा नय से समझाओ। तो दूसरी दफ़े कहा, अग्नि उष्ण है। तो तीसरी दफ़े उसने पूछा कौनसे नय से? तीसरी दफ़े गुरु ने कहा, अग्नि उष्ण है। तो समझ गया कि, आहाहा! यह तो स्वभाव की बात है, नय की ज़रूरत इसमें नहीं है।

ऐसे उपयोग में राग आता ही नहीं है। नोट अलाउड (Not Allowed), उसमें प्रवेश है (नहीं)। जड़ का प्रवेश चेतन में होता (ही नहीं है)। ऐसा अस्तित्व तो सबका है, जो समझे तो सम्यग्दर्शन हो जाए।

दान आदि के भाव या शरीर, मन वाणी इत्यादि परज्ञेयों का प्रवेश नहीं है, वे तो भिन्न-पर हैं, इसलिए जानने की क्रिया हि ज्ञान के द्वारा, आत्मा द्वारा ज्ञात होती है। अभेद से आत्मा जानने में आता है, भेद से ज्ञान की क्रिया जानने में आती है।

दया के परिणाम होते हैं, उन्हें जाननेवाली क्रिया आत्मा की है। जाननेवाली जो क्रिया है, वो तो आत्मा की है। दया का परिणाम, दान का परिणाम जानने में आया, वह ज्ञान तो आत्मा का है ना? **और वह ज्ञानक्रिया ज्ञान का ज्ञेय है।** ज्ञानक्रिया, ज्ञान का ज्ञेय है। राग, ज्ञान का ज्ञेय (नहीं है)। कर्ता-कर्म तो है नहीं। आहाहा! कर्ता का कर्म तो राग है नहीं। ये कलश बहुत ऊँचा (मार्मिक) है। समझे?

और वह ज्ञानक्रिया ज्ञान का ज्ञेय है। परंतु दया के परिणाम, देखो! दया का परिणाम तो है। स्वीकार तो किया गुरुदेव ने। परमात्मा नहीं हुआ, यथाख्यात-चारित्र हुआ नहीं। आहाहा! **परंतु दया के परिणाम परमार्थ से आत्मा के नहीं हैं**, परमार्थ से दया के परिणाम, उसका स्वामी आत्मा नहीं है। दया का स्वामी आत्मा नहीं है। वो तो स्वस्वामी-संबंध ज्ञायक के साथ है। ऐसा निर्जरा अधिकार में २०८ गाथा में, आचार्य भगवान ने स्वस्वामी-संबंध ज्ञायक के साथ जोड़ा है। मैं ज्ञायक हूँ। मैं ज्ञायक का स्वामी हूँ। पर्याय की बात छोड़ दिया।

आत्मा का नहीं हैं, ये परिणाम दया का, परमार्थ से आत्मा का नहीं है, और आगे, **परमार्थ से वह** यानि दया का परिणाम, **आत्मा का ज्ञेय भी नहीं हैं।** आहाहा! देखो! यह ज्ञेय के नाम से चिपक (चौंट) गया। जाना हुआ प्रयोजनवान, जानूँ तो सही ना? जानूँ तो सही!

एक गुरुदेव के (प्रवचन के) ग्यारह भाग निकले हैं ना? उसमें १४६ पेज, पहला भाग। पहला भाग, उसमें पेज १४६, उसमें गुरुदेव ने लिखा कि जगत को आत्मा को जानना छोड़कर पर्याय को जानने की रूचि है, तो ऐसा तर्क लगाता है, पर्याय तो है ना? जाननी तो चाहिए ना? ये अवस्तु तो नहीं है ना? ऐसे कर-करके मिथ्यात्व दृढ़ करता है। जानने के बहाने के नीचे भी मिथ्यात्व पुष्ट करता है। ऐसा १४६ पेज में लिखा है। घर जाकर पढ़ लेना। आहाहा! टाइम मिले तो। आहाहा! समाचार-पत्र पढ़ने का टाइम मिलेगा मगर ये, कम लोग पढ़ेंगे। कोई-कोई तो पढ़ेंगे।

पण्डितजी:- आप पर भरोसा है ना सबको।

उत्तर:- बराबर! मैं तो आधार देता हूँ ना? गुरु का वचन पढ़े तो श्रद्धा बलवान हो जाये। इसमें क्या? **और परमार्थ से वे आत्मा के ज्ञेय भी नहीं।** आत्मा का ज्ञेय इधर (अंदर) है। दया-दान, पर में कहाँ तेरा ज्ञेय है? कर्ता का कर्म तो नहीं है और उसके साथ ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध भी (नहीं है)। ज्ञाता-ज्ञेय का व्यवहार भी नहीं है। ज्ञाता-ज्ञेय का व्यवहार चाहिये, तो इतना ले कि मैं ज्ञान और ये ज्ञेय, जानने में आता है, ऐसा अंदर का लेना, व्यवहार। अंदर में भेदरूप व्यवहार। आहाहा! वहाँ कहाँ से गया जड़ में? जड़ मेरा ज्ञेय। जड़ ज्ञेय होता नहीं है। चेतन ही ज्ञेय होता है, चेतन का। सूक्ष्म बात है!

ज्ञाता-ज्ञेय के व्यवहार का निषेध करके अंदर जाता है। **अब किसी को ऐसा लगे कि यह तो कैसा धर्म है?** किसी को ऐसा लगे कि ये दया ही नहीं करना, दया को जानना नहीं, तो क्या करना? ऐसा लगे किसी को। आहाहा! निकटभव्य को न लगे। आत्मार्थी को तो अमृत जैसा लगे।

अब किसी को ऐसा लगे कि यह तो कैसा धर्म? भूखे को भोजन देना, प्यासे को पानी देना, नंगे को कपड़ा देना और बीमार की सेवा करना - ऐसी कोई बात हो तो समझ में आ जावे। ऐसी बात हो तो, तो समझ में आ जावे। धर्म की बात। धर्म की नहीं कर्म की (बात) है वो तो। धर्मात्मा धर्म की बात कहते हैं।

समझ में आवे। अरे भाई! ये तो सब राग की क्रियायें हैं। ये तो सब राग की क्रिया है। तो क्या करुणा नहीं करना? करुणा छोड़ देना? निष्ठुर हो जाना, निश्चयाभासी हो जाना? अरे! मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसा ले ले ना। ऐसा ले ना, तेरा काम हो जाएगा। **ये सब तो राग की क्रियायें हैं, बापू! उस काल में जड़**

की क्रिया तो जड़ में होनेयोग्य हुई है, वह क्रिया तेरी नहीं और राग की क्रिया भी तेरी नहीं है। आत्मा की, राग-क्रिया आत्मा की नहीं है। ज्ञान-क्रिया आत्मा की है। आत्मा ज्ञान तो करता है, मगर राग का करनेवाला नहीं है। आत्मज्ञान का आत्मा कर्ता है, वो भी कथंचित् है। सर्वथा ऐसा नहीं है। आहाहा! परिणमता है तो ज्ञान का कर्ता कहा जाता है।

क्रिया भी तेरी नहीं। अरे! उस काल में राग का ज्ञान हुआ, राग हुआ और उसका ज्ञान हुआ, वह ज्ञान, राग का नहीं; राग उसमें प्रविष्ट नहीं, ज्ञान में। जानने की क्रिया तेरे अस्तित्व में हुई है, आत्मा के अस्तित्व में तो जानने की क्रिया होती है। राग की क्रिया आत्मा के द्रव्य, गुण, पर्याय में नहीं है। अरे! अभी द्रव्य चेतन, गुण चैतन्य और पर्याय चेतना, ये वो बात चलती है। तीनों में चेतना व्यापक है। राग में चेतना व्यापक नहीं है, व्याप्य-व्यापक नहीं है। चेतन, जड़ के अंदर जाता नहीं है, व्यापक नहीं है। आहाहा! ऐसा पाठ है।

जानने की क्रिया तेरे अस्तित्व में हुई है, वह तेरी है और वस्तुतः तेरा ज्ञेय है, जानने की क्रिया हुई ना? जो क्रिया, ज्ञान आत्मा को जानता है और राग को जानता है, तो ज्ञान की क्रिया जो हुई, वो तेरा ज्ञान का ज्ञेय है, भेद अपेक्षा से। **रागादि परमार्थ से तेरा ज्ञेय नहीं है।** कर्ता का कर्म तो नहीं मगर तेरे जानने लायक भी नहीं है।

कषाय का दर्शन करने से तेरे को क्या लाभ होगा? राग तो कषाय है ना? वो सभी आचार्य भगवान ने कहा है (कि) राग तो कषाय है। तो कषाय का दर्शन, दर्शन नहीं करना चाहिए। सुबह में उठे ना कोई, हमारे वहाँ गाँव में आते हैं। तो कोई वो झाड़ूवाला मिले। अरे! (मेरा) दिन बिगड़ गया। आहाहा! मगर राग मेरा है, तो भव बिगड़ गया, बिगड़ गया। आहाहा! राग का दर्शन करना, वो स्वभाव है कि आत्मा का दर्शन करना, भगवान का दर्शन करना (वो स्वभाव है)? फझल में उठे, भगवान का दर्शन करो। यह इस दर्शन का निमित्त ये भगवान हैं, उनका भी दर्शन करो। इसका दर्शन ट्राई (कोशिश) करो, न हो तो वहाँ तो (जाना ही है)। मगर कषाय दर्शन करने जैसी चीज़ नहीं है। वहाँ तो अपना स्मरण आता है। भगवान की प्रतिमा देखकर अपना जो विस्मरण स्वरूप हो गया था ना, तो अरिहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को देखते ही अपना स्मरण आ जाता है। तो जैसा तेरा स्वरूप है, ऐसा मेरा स्वरूप है, ऐसे अंदर में वहाँ से लक्ष्य छूटकर, इधर लक्ष्य आया और चेतन, चैतन्य और चिदविवर्तन, तीन भेद में आया, (फिर) तीन भेद को उल्लंघन कर अंदर में घुस जाता है, तो मोह का नाश हो जाता है। वो प्रतिमाजी के दर्शन का व्यवहार है, यथार्थ है। आहाहा! वो मानते नहीं हैं, वो तेरी भूल है।

तेरे अस्तित्व में हुई है, वह तेरी है और वह वस्तुतः तेरा ज्ञेय है, रागादि परमार्थ से तेरे ज्ञेय नहीं हैं। कषाय का दर्शन करना? आहाहा! कषाय करना तो कषाय हो गया, कषाय करने की भावना तो कषाय हो गया। कषाय समझे ना? कल्लखाना, उसका नाम कषाय है। तो राग करने की भावना वो कषाय हो गया, और राग का दर्शन करने का (भाव आया), तो भव बिगड़ जाएगा। दिन बिगड़ेगा और भव भी बिगड़ेगा। आत्मा को जान ले ना। प्रभु विराजमान चैतन्यमूर्ति, अंदर सीमंधरनाथ विराजमान हैं। सीमंधरनाथ इधर हैं। एक इधर हैं और एक उधर हैं। समयसार एक इधर है और एक समयसार निमित्तरूप है।

रागादि परमार्थ से तेरे ज्ञेय नहीं हैं। समझ में आया कुछ? गुरुदेव (कहते हैं, तेरे को) कुछ समझ में आया? तेरे ज्ञान का ज्ञेय तेरा आत्मा है। ज्ञान का ज्ञेय कषाय नहीं है। कषाय का दर्शन करना अभी छोड़ दे। आहाहा! अभी छोड़ दे। आज तक भले किया, क्षम्य है। माफ है। समझे? भूतकाल को याद नहीं करना। बस! भूतकाल तो गया, अभी (तक) बाजी (खेल) हाथ में नहीं है। अभी बाजी (खेल) हाथ में है। राग का दर्शन करना छोड़ दे। आत्मा का दर्शन कर ले, उसमें कर्म नड़ता (बाधा करता) नहीं है। ये पंचमकाल नड़ता (बाधा करता) नहीं है। नड़ता क्या नहीं है? आड़े नहीं आता है। दर्शन करने में कोई बाधा नहीं है, पंचमकाल (की)। आहाहा! अशुभ चौघड़िया (मुहूर्त) में, काल चौघड़िया (मुहूर्त) में भी आत्मा का दर्शन होता है। काल चौघड़िया (मुहूर्त) है ना? समाज कहता है ना? है ही नहीं कुछ। काल तो काल है, काल में कहाँ आत्मा है?

रागादि परमार्थ से तेरे ज्ञेय नहीं हैं। समझ में आया कुछ? करुणा करके, थोड़ा समझ में आया? समझ ले। आहाहा! ये मनुष्य-भव मिला है, फिर से मिलेगा नहीं मिलेगा। आहाहा! तू एक काम कर ले। बहुत काल जाने के बाद, ये मनुष्य-भव मिलता है और मनुष्य-भव मिले, उसमें भी सच्चे देव-गुरु-शास्त्र (का) मिलना कठिन है और (जो) मिलें, तो उनकी वाणी सुनना भी दुर्लभ है। वाणी सुनने में आवे उसमें भेदज्ञान करना, वो भी दुर्लभ है। इससे दुर्लभ तो अभेद अनुभव करना, वो इससे दुर्लभ है। अशक्य नहीं है।

अज्ञानी जीवों को इतना सब (दया, दान आदि को) उल्लंघ कर, उल्लंघ कर यहाँ (ज्ञानभाव में) आना बड़े मेरुपर्वत उठाने जैसा लगता है! राग से मेरा आत्मा भिन्न है, ये मेरु उठाना, ऐसा इसको लगता है। राग है आत्मा में और (कहें) राग नहीं है? ये दिखाई देती है घड़ी (और कहें) कि दिखाई नहीं देती है घड़ी? ये क्या है? घड़ी नहीं दिखती है तेरे को, आत्मा का ज्ञान दिखता है। सचमुच तो आत्मा दिखता है। ले!

मुमुक्षु:- परम सत्य बात है!

उत्तर:- यह कलश ऊँचा (सूक्ष्म) है। उसके ऊपर व्याख्यान हो गया है। छप गया बूक (book), वो ११०० बुक छप गयी हैं ईधर। पाटनीजी का पत्र आया था कि ११०० बुक छपने का ऑर्डर (order) दे दिया। आहाहा! आप जब आओगे तब आपके हाथ में बुक मिल जाएगी। तब तक टू कॉपी (true copy) छप जाएगी। इसमें बहुत छोटे अक्षर थे, तो बड़े अक्षर, मैंने कहा पंडित जी को ज़रा बड़े अक्षर कर दो, तो फोटो प्रिंट करके बड़े अक्षर कर दिये।

अज्ञानी जीवों को (दया, दान आदि के) राग से आत्मा भिन्न है, ऐसा उल्लंघ कर, भेदज्ञान करना बहुत कठिन पड़ता है, बड़े मेरुपर्वत उठाने जैसा भार लगता है, बोझा लगता है, परंतु इसमें तेरा हित है, भाई! राग से भिन्न है ही। अभिन्न हो गया है और भिन्न करना है, ऐसा नहीं है। भिन्न होने पर अभिन्न मानता है। (अरे!) अभी भिन्न मान ले, इतनी ही देर है। (राग) अभेद तो हुआ नहीं। जैसे ज्ञान आत्मा से अनन्य है, ऐसे राग अनन्य हुआ नहीं है।

अब कहते हैं, इस प्रकार स्वयं ही स्वतः जनाने योग्य होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञेयरूप है।

अपना आत्मा ही अपने को जानने में आ रहा है, इसलिए स्वयं आत्मा, अपना आत्मा ज्ञेय है। जानने में आता है आत्मा, इसलिए आत्मा ज्ञेय है।

और स्वयं ही अपना जाननेवाला होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञाता है। आहाहा! स्वयं को ही जानता है। पर को नहीं जानता है तो आत्मा का नाम ज्ञाता है। साक्षात् ज्ञाता हो जाता है। पहले ऐसे विचार में आ जावे ना और विचार में भी कोई गहराई में से, अंदर में से जो आ जावे, तो ज्ञाता का पक्ष आ जावे, तो साक्षात् ज्ञाता हो जावे। कर्ता का पक्ष जो रह जावे तो साक्षात् ज्ञाता होता नहीं। ज्ञाता का पक्ष आ जावे, कोई जुदा (भिन्न) प्रकार का, अंतर से, गहराई से, नैपथ्य में से, अंदर में से आवे, स्वयं। आहाहा! तो थोड़े दिनों में थोड़े महिनों में, ज़्यादा से ज़्यादा छह महिना लिमिट दिया है, आहाहा! आचार्य भगवान ने। कोई-कोई को छह महीना लगता है, बाकी तो एक दिन, दो दिन, कोई को महीना, दो महिना लग जाता है। मैं ज्ञाता हूँ, बस। आहाहा! कर्ता की बात सुनना ही नहीं और घड़ीयाल (घड़ी) दिखती है, वो बात सुनना ही नहीं। तो व्यवहार कैसे चलेगा? व्यवहार नहीं चले तो तु भगवान तो हो जाएगा। तो तेरे को व्यवहार का क्या काम है? संसार में घूमना है तेरे को? आहाहा! अल्पकाल में मुक्ति हो जाएगी तेरी। परमात्मा बन जाएगा। आहाहा! फिर कहाँ दुकान करना है और व्यापार करना है, शादी करनी है? बेटे-बेटी की शादी करनी है। कुछ नहीं रहेगा। तू परमात्मा हो जाएगा। आहाहा! मैं परमात्मा हूँ, ऐसा लक्ष्य में ले। परमात्मा को जान तो आत्मा, परमात्मा हो जाता है, ऐसा लिखा है शास्त्र में।

स्वयं ही अपना जाननेवाला होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञाता है। इस प्रकार ज्ञानमात्र भाव, ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता-इन तीन भावों युक्त, याने सहित, सामान्यविशेषस्वरूप वस्तु है। सामान्य-विशेष दो मिलकर एक वस्तु है। सामान्य, सामान्य-विशेष नहीं है, विशेष नहीं है, वो बात सच्ची है। वो दृष्टि अपेक्षा से कथन है, यह ज्ञान अपेक्षा का कथन है। वो ध्येय का कथन है, ये स्वज्ञेय का कथन है। अनुभूति के काल में सामान्य-विशेष स्वरूप आत्मा, पूरा आत्मा ज्ञेय बन जाता है। अभेदनय से आत्मा एक है। आहाहा! प्रमाण से देखो तो द्रव्य और पर्याय दो जानने में आते हैं।

देखो! इस सबका सार कहा। ज्ञात होनेयोग्य परपदार्थ, पर में रहे हैं, और जाननेवाला, जाननहार में रह रहा है। रह रहा है। जाननेवाला स्वयं ज्ञानरूप होता हुआ स्वयं को जानता है; आहाहा! जानना तो आता है। जानना तो आता है। ऐसा-ऐसा करता है ना? जानना तो आता है। उसको जानने के बजाय इसको (आत्मा को) जान। बस! उपयोग पलट दे। गुरुदेव फ़रमाते थे कि उपयोग बदल दे। तेरा ज्ञेय बदल दे। ज्ञेय बदल देने से उपयोग बदल जाएगा। **स्वयं ज्ञानरूप होता हुआ स्वयं को जानता है; इस प्रकार आत्मा स्वयं ही ज्ञात होने योग्य है; ज्ञानमात्र भाव ही अपना ज्ञेय है; परपदार्थ को ज्ञेय कहना, वह व्यवहार है, बस!**

और स्वयं ही अपना जाननेवाला होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञाता है। आहाहा! पर के साथ परमार्थ से आत्मा का कोई संबंध नहीं है।

नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः परद्रव्यात्मतत्त्वयोः, कर्ता-कर्म संबंध नहीं है, निमित्त-नैमित्तिक संबंध भी नहीं है और ज्ञाता-ज्ञेय संबंध भी नहीं है, ऐसी चीज़ है। अंदर में जाने के लिए वो है। **पर के साथ**

परमार्थ से आत्मा का कोई भी संबंध नहीं है। आहाहा! जो ज्ञात होती है, वह भी अपनी दशा, बस लास्ट पेज है अभी, पूरा हो जाएगा, जाननेवाला भी स्वयं और ज्ञान भी स्वयं ही। आहाहा! ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय तीनों ही एकरूप। नाम तीन हैं, मगर वस्तु तो एक है।

अंतर में दृष्टि देने पर ऐसे तीन भेद आत्मा के हैं-ऐसा भी रहता नहीं है! अंतर्दृष्टि देने से ये ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता, ऐसे तीन भेद दिखाई देते नहीं है। परवस्तु ज्ञेय और स्वयं ज्ञाता, यह तो कहीं बहुत दूर रह गया। आत्मा कर्ता और राग कर्म, वो तो बहुत (दूर), पहले से ही इनकार किया। बाउंड्री के बाहर। आहाहा! मगर इधर तो मैं ज्ञाता और परज्ञेय, वो भी दूर रह गया। स्वयं ही ज्ञेय, स्वयं ही ज्ञान और स्वयं ही ज्ञाता-ऐसे तीन भेद भी अंतर्दृष्टि में समाहित नहीं होते; तीन भेद होने पर भी दृष्टि में, अभेद में भेद दिखता नहीं है। इसका नाम निर्विकल्प अनुभव है।

निर्विकल्प अनुभव के काल में सम्यग्दर्शन का जन्म होता है और उस काल में अतीन्द्रिय आनंद भी आता है। अंतर्दृष्टि में समाहित नहीं होते; सब अभेद एकरूप अनुभव में आता है। लो, इसका नाम धर्म है; ये धर्म की विधि पहली, पहली सीढ़ियों धर्म की। चारित्र की बात नहीं है, अभी तो सम्यग्दर्शन की बात है।

जिसमें सामान्य-विशेष का अभेदपना प्राप्त-सिद्ध हुआ, वह धर्म है। द्रव्य-पर्याय एक वस्तु है, पूरा आत्मा है। द्रव्य से पर्याय भिन्न नहीं है। क्या कहा? द्रव्य से पर्याय भिन्न, पर्याय भिन्न-पर्याय भिन्न तो बहुत सुना। अभी अभिन्न? तो दृष्टि का विषय कहाँ गया? कि दृष्टि के विषयपूर्वक अभेद होता है, उसमें दृष्टि का विषय आ गया। ज्ञेय में, ज्ञाता में, ध्येय आ गया गर्भिता तो ध्याता हुआ, तो ध्येय और ध्यान अंदर में आ गया।

आहाहा! 'ऐसा ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ' - ऐसा अनुभव करनेवाला पुरुष अनुभवता है, अनुभव करनेवाला पुरुष ऐसा अनुभवता है। आत्मा भी मैं, कि ज्ञान भी मैं, ज्ञेय भी मैं, ज्ञाता भी मैं-ऐसे तीनों एक मैं हूँ - तीन होकर एक मैं हूँ, ऐसा जो ज्ञानमात्र भाव, वह मैं हूँ ऐसा अनुभव करनेवाला पुरुष स्वयं को, अपने को, अनुभवता है। ऐसा अनुभव होना वह धर्म है। धर्म की शुरुआत। 'अनुभव' अनु अर्थात् अनुसरण कर के, भव अर्थात् भवन होना; आत्मा को-ज्ञानमात्र वस्तु को-अनुसरणकर होना, परिणमना, वह अनुभव है और वह धर्म है। इसके अतिरिक्त राग को अनुसरण करके होनेरूप जो अनेक क्रियाएँ हैं, वह सब संसार है, अर्थात् मिथ्यात्व हैं। वे सब अरण्यरुदन (रण में शोर मचाने) जैसा है। अरण्यरुदन, जंगल में हिरण कोई रोवे कि मैं मर जाता हूँ, पानी पिलाओ, पानी पिलाओ, पानी पिलाओ। कौन सुने तेरी पुकार? आहाहा! कोई पुकार सुनेगा नहीं। आहाहा!

निश्चय है, निश्चय है, निश्चय है, कोई राग की बात नहीं करता है। आहाहा! राग को याद ही नहीं करना। हेयरूप में याद करने जैसी चीज़ नहीं है। हमारे पिताजी फ़रमाते थे कि जो राग को याद करेगा ना, तो राग घर में आ जाएगा। राग को याद ही नहीं करना। कषाय को क्यों याद करना? बुलाना है कषाय को अपने घर पे? क्यों याद करना? कोई प्रयोजन नहीं है उसका।

आहाहा! अनुभव करनेवाला पुरुष ऐसा अनुभव करता है कि जाननहार भी मैं, ज्ञान भी मैं

हूँ और ज्ञात होने ज्ञेय भी मैं ही हूँ। इन तीनों के अभेद की दृष्टि होने पर उसे स्वानुभव प्रगट होता है, और उसमें उसे अतीन्द्रिय आनंद के स्वाद का वेदन प्रगट होता है। अतीन्द्रिय आनंद आता है, अनुभव के काल में, सिद्ध जैसा, हों। मात्रा कम, जाति एक। जैसे सैकरीन (saccharin) और शक्कर। तो (सेकरीन में) साढ़े पाँच सौ गुनी है, मिठास, मगर जाति तो मिठास की है ना। ऐसा सिद्ध जैसा आनंद आता है, हिरण को, मेंढक को। सिंह महाराज को (आनंद) आया कि नहीं? महावीर भगवान सिंह के भव में, उनको आनंद आया है। है इधर। आहाहा!

इसे समकित और धर्म कहते हैं। समझ में आया कुछ? देखो, यहाँ सामान्य-विशेष दोनों एक साथ लिये हैं, क्योंकि प्रमाणज्ञान कराना है। सम्यक्एकांतपूर्वक अनेकांत होता ही है। द्रव्य के आश्रय से द्रव्य-पर्याय, दो का ज्ञान होता है। एक का आश्रय, ज्ञान अनंत का हो जाता है। अनंतगुण, अनंतपर्याय, अनंतधर्म (सभी का ज्ञान हो जाता है)। प्रमाणज्ञान में वस्तु त्रिकाली सत्, उसकी शक्तियाँ त्रिकाली सत् और उसकी वर्तमान पर्याय, ये तीनों होकर वस्तु आत्मा कहा है। उसमें, वो ज्ञेय में, शरीर नहीं है, मन नहीं है, वाणी नहीं है, कर्म नहीं है और विकार इत्यादि नहीं आते हैं। वो तो ज्ञानमय हो गया आत्मा, अभेद।

जिनवाणी स्तुति।